INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH AND TECHNOLOGY
ISSN 2582-7358
Peer-Reviewed Journal
Impact Factor 6.328

वैदिक वाङ्मय में एकेश्वरवाद

नरेन्द्र कुमार पितलिया
सहायक आचार्य, संस्कृत
सेठ मथुरादास बिनानी
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
नाथद्वारा

वह सिद्धांत जिसमें एक ईश्वर को ही संसार का सृजन और नियमन करने वाली सर्वोच्च शक्ति माना जाता है, एकेश्वरवाद से अभिप्राय है कि, बहुत से देवताओं की अपेक्षा एक ही ईश्वर को मानना। इस धार्मिक अथवा दार्शनिक वाद के अनुसार कोई एक सत्ता है, जो विश्व का सर्जन और नियंत्रण करती है, जो नित्य ज्ञान और आनन्द का आश्रय है, जो पूर्ण और सभी गुणों का आगार है और जो सबका ध्यान केन्द्र और आराध्य है।

न यस्य द्यावा पृथिवी अनुव्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।[1]
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुष्क्।।

– ऋग्वेद 1.54.24

अर्थात् जिस परमेश्वर का आकाश और पृथिवी, समुद्र और अन्य लोक लोकान्तर अन्त नहीं पा सकते वह सब में ओतप्रोत है। मेघ, बिजली आदि भी गर्जते या वृष्टि करते हुए उसकी महिमा करते किन्तु उसका अन्त पाने में असमर्थ है, ऐसा वह परमेश्वर एक ही है उसने सबमें व्याप्त होकर अपने से भिन्न इस संसार को बनाया है।

एकेश्वरवाद का उदय भारत में ऋग्वैदिक काल से ही पाया जाता है। भारतीय विचारधारा के अनुसार विविध देवता एक ही देव के विविध रूप है। अतः चाहे जिस देव की उपासना की जाए वह अन्त में जाकर एक ही देव को अर्पित होती है। ऋग्वेद में वरूण, इन्द्र, विष्णु, विराट् पुरूष, प्रजापति आदि का यही रहस्य बतलाया गया है।

आचार्य 'यास्क' के अनुसार ऐश्वर्यशाली होने से ऋग्वेद काल में एक ही आत्मा की आराधना विभिन्न रूपों में की जाती है–

"माहाभाग्याद्देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।।[2]

यास्क के इसी मत को आधार बनाकर, विद्वानों ने स्वीकार किया है कि ऋग्ववेद में अनेक देवताओं की आराधना होने के साथ ही साथ 'एकेश्वरवाद' की भावना भी विद्यमान थी। वस्तुतः ऋग्वेद में एक ही 'परमसत्ता' को अनेक देवताओं के रूप में परिगणित किया गया है। उदाहरणार्थ– ऋग्वेद में अग्नि को ही वरूण, मित्र और इन्द्र भी कहा गया है और अभिव्यक्त किया गया है कि उसी में सभी देवता केन्द्रित हैं–

"त्वमग्ने वरूणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः।
त्वे विश्वे सहस्त्रपुत्र देवास्त्वमिनन्द्रोदाशुषे मर्त्याय।।

ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में इसी परमशक्ति को 'परमेश्वर पुरूष' के रूप में चित्रित किया गया है। वहाँ केवल देवताओं में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण सृष्टि ही में एक परमसत्ता परमेश्वर का रूप देखा गया है–

"सहस्त्रशीर्षा पुरूषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।[3]

ऋग्वेद के हिरण्यगर्भं सूक्त (10/121) में "कस्मै देवाय हविषा विधेम।" की बार–बार आवृत्ति के द्वारा एक ओर तो यह प्रश्न उपस्थित किया गया है कि हम किस देवता की स्तुति करें और दूसरी ओर उसके समाधान के रूप में वहीं उस सृष्टिकर्ता की उन विविध प्रकार की शक्तियों का कथन भी कर दिया गया है। अन्त में एक ही परमसत्ता परमेश्वर प्रजापति से ही सृष्टि की उत्पत्ति बताई गयी है। इस एक देवता की विभिन्न संज्ञायें उपलब्ध होती है– प्रजापति, हिरण्यगर्भ, पुरूष आदि। ऋग्वेद का यह सूक्त गहरे आध्यात्मिक तत्वों से भरा हुआ है। आनन्द रूप होने से अथवा इदमित्थंरूप से अनिर्वचनीय होने के कारण ये प्रजापति 'कः' शब्द के द्वारा सम्बोधित किये गये हैं, क्योंकि उनका स्वरूप अनिर्वचनीय है।

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में एकेश्वरवादिता की दृष्टि को पूर्णतया व्यक्त करने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नासदीय यूक्त के ऋषि के सामने इस विश्व की उत्पत्ति की विषम पहेली विद्यमान थी। यह विश्व कहाँ से उत्पन्न हुआ? इसके मूल में कौन–सा तत्त्व

विद्यमान था? किस वस्तु की उत्पत्ति सर्वप्रथम हुई? आदि प्रश्नों का समुचित उत्तर देना सरल नहीं है, परन्तु इस सूक्त में इन्हीं प्रश्नों का उचित उत्तर अन्तर्दृष्टि की सहायता से प्रस्तुत किया गया है। सृष्टि के आदिकाल में न तो असत् ही था और न सत् ही था। वहाँ न तो आकाश था, न तो स्वर्ग ही विद्यमान था, जो उससे परे हैं। किसने ढका था? उस समय न मृत्यु थी, न तो अमरत्व ही था। उस समय दिन तथा रात का पार्थक्य न था। इतने निषेधों के वर्णन के अनन्तर ऋर्षि सतात्मक वस्तु का वर्णन कर रहा है उस समय बस एक ही था, जो वायुरहित होकर भी अपने सामर्थ्य से श्वास ले रहा था। यह है नितान्त उदात्त एकत्वभावना– "तदेकम्" वह एक। उसके लिंग निर्धारण में असमर्थ होकर वैदिक ऋषियों ने सर्वत्र उस परमतत्व के लिए नपुंसक 'तत्' तथा 'सत्' शब्दों का प्रयोग किया है। वहीं इस जगत् का मूल कारण है। उसी से चेतन और अचेतन वस्तुओं की उत्पत्ति है। वह एक है, अद्वितीय है, अग्नि, मातरिश्वा, यम आदि देवता उसी के भिन्न–भिन्न रूप को धारण करने वाले हैं। वह एक ही है, परन्तु कवि लोग उसे भिन्न–भिन्न नाम से पुकारते हैंः–

इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरूत्मान्।
एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यम मातरिश्वानमाहुः।।[4]

ईश्वर परमप्रकाश स्वरूप है और वह एक ही परमशक्ति में त्रिलोक में व्याप्त है मानवता से उसका गहरा सम्बन्ध है। परमार्थ और परम प्रेम के द्वारा जो मनुष्य उसे भजता है, वो उसे पा लेता है। ईश्वर एक अप्रमेय स्वरूप है उसकी आकृति निर्धारित नहीं की जा सकती वह सच्चिदानंद घन परमात्मा सम्पूर्णभूतों की आत्मा है। वह परमप्रकाश स्वरूप परमेश्वर अनंत है। अनादि है वह भौतिक नहीं दिव्य स्वरूप है इसलिए वह अनुभवगम्य है।

वेदों में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन औंकार के रूप में भी वर्णित किया गया है। हमारी समस्त दार्शनिक और धार्मिक परम्परा में उसी ओ को परम तत्व ब्रह्म का वाचक माना गया है। विविध देवताओं के चित्रण के मूल में एक ही परम सत्ता को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि इन्द्रादि देव वस्तुतः एक ही 'परं सत्' के विविध नाम है और इन नामों का 'नामतधा' देव एक ही है।

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।।[5]

उसी एक देव का नाम ओम है। उसी का वाचक प्रणव है। 'तैत्तिरीय आरण्यक' में भी ओम के विभिन्न प्रयोगों को सूत्र रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है'

"ओमिति ब्रह्मा। ओमितीदं सर्वम्। ओमिति एतदनुकृति ह स्व वा अप्यो श्रावयेति आश्रावयति।

ऋग्वेद में न केवल नाना रूपात्मक जगत् के मूल में एक ही तत्त्व स्वीकार किया गया है। अपितु यह भी स्पष्ट रूप से माना गया है कि सूर्य आदि प्रतीकों द्वारा वर्णित अनेकता में अनुस्यूत एकता का प्रतिपादन ही वेदों का परम लक्ष्य है।

एक एवाग्निनबहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः।
एकैवोषा सर्वमिदं विभात्येकं वाइदं वि बभूत सर्वम्।।[6]

अतः जब "ओमितीदं सर्वम्" कहा जाता है तो इसका आशय यह होता है कि ओंकार अपने इस रूप में सर्वात्मक है। इसी "एकं बहूनाम्" को सहस्त्रशीर्षा, सहस्त्राक्ष और सहस्त्रपात् परमेश्वर पुरूष के रूप में वर्णित किया गया।

ईश्वर सारे संसार को व्याप्त करके विद्यमान है। वो अपनी विभूतियों के द्वारा सारे सृष्टिचक्र को चला रहा है। संसार में सूर्य एक है, चन्द्रमा एक है और एक ही समीर सारे जगत् में बह रहा है। सभी मनुष्यों की बनावट व आहार–विहार एक जैसे ही हैं। सभी प्राणियों को एकही चेतन शक्ति संचालित कर रही है। सभी चेतन प्राणियों में एक ही आत्मतत्व का अंश है इस दृष्टि से भी ईश्वर की एकेश्वरवादिता प्रतिपादित होती है। प्रकृति भी किसी के साथ में भेदभाव नहीं रखती वो समभाव रूप से सभी को आशय प्रदान करती है तो इस दृष्टि से भी हमें एकता का ही सबक मिलता है। सारी मानव जाति एक है मानवी धर्म एक तो ईश्वर अलग–अलग कैसे हो सकता है। एक ही परमात्मा को अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता है परन्तु सम्बोधन तो केवल मात्र पुकारने का एक साधन है। परमेश्वर तो भक्त की भाषा को सुनता है। अतः इस चराचर जगत में विद्यमान सभी प्राणियों का ईश्वर एक है। उसमें भिन्नता रखना हमारी ही अज्ञानता है। वहीं ईश्वर मनुष्य की मधुर वाणी में बोलता है, पक्षियों के कलेरव में वहीं

चहकता है, विकसित पुष्पों के रूप में वही हँसता है, प्रचण्ड गर्जन तथा तूफान में वही क्रोध–भाव प्रकट करता है, नभोमण्डल में चन्द्र, सूर्य तथा ताराओं को वहीं स्थिर कर देता है। उस परमेश्वर की सत्ता सर्वत्र विद्यमान है।

उपनिषदों में अद्वैतवाद के रूप में एकेश्वरवाद का वर्णन पाया जाता है। उपनिषदों का सगुण ब्रह्मा ही ईश्वर है, यद्यपि उसकी सत्ता व्यवहारिक मानी गई है, परमार्थिक नहीं। महाभारत में विशेषकर भगवद्गीता में ईश्वरवाद का सुन्दर विवेचन पाया जाता है। षड्दर्शनों में न्याय, वैशेषिक, योग और वेदान्त एकेश्वरवाद सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। पुराणों में तो ईश्वर के अस्तित्व का ही नहीं अपितु उसकी भक्ति, साधना और पूजा का अपरिमित विकास हुआ। विशेषकर विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवत ईश्वरवाद के प्रबल पुरस्कर्ता हैं। वैष्णव, शैव और शाक्त सम्प्रदायों में भी एकेश्वरवाद की प्रधानता रही है। इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर आज तक भारत में एकेश्वरवाद प्रतिष्ठित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ऋग्वेद – 1. 54.24
2. निरूक्त – 7.1
3. ऋग्वेद – 10.90.1
4. ऋग्वेद – 1.164.46
5. ऋग्वेद – 10.82.3
6. ऋग्वेद – 5.58.2